विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक
महाराज विक्रमादित्य शोध पीठ
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010
फोन : 0734-2521499, 0755-2660407
e-mail : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-3
विक्रमादित्य ने ही चलाया था सबसे पहले विदेशी शासकों से मुक्ति का अभियान
डॉ. राजेश कुमार मीणा

पृष्ठ क्र. 4-6
विक्रमकालीन कलाओं का अद्‌भुत संसार
डॉ. श्याम सुंदर निगम

पृष्ठ क्र. 6-7
विक्रमादित्य के नवरत्न : बेताल भट्ट
डॉ. प्रीति पांडे

पृष्ठ क्र. 8
पुस्तक चर्चा
राजा भोज
मनोज कुमार

विक्रमादित्य ने ही चलाया था सबसे पहले विदेशी शासकों से मुक्ति का अभियान

डॉ. राजेश कुमार मीणा

यह जानना रोचक है कि छठी सदी में दो अवन्ति जनपद हुआ करती थी जिसमें उत्तर अवंति की राजधानी उज्जयिनी थी और दक्षिण अवंति की राजधानी महिष्मती हुआ करती थी। भण्डाकर का भी यही विचार है कि छठीं सदी ई.पू. दो अवन्ति जनपद थे। विक्रमादित्य ने भारत की भूमि को विदेशी शासकों से मुक्त करने के लिए व्यापक अभियान चलाया। उन्होंने सबसे पहले शको को 57-58 ईसा पूर्व अपने क्षेत्र से बाहर निकाल दिया। मालवा का उल्लेख पाणिनी की अष्टाध्यायी में आयुधजावी संघ के रूप में हुआ है। पंतजलि के महाभाष्य में भी इनका उल्लेख है। छठीं सदी ई. पू. में मालवा प्राचीन अवन्ति जनपद के रूप में जाना जाता था। इसका उल्लेख बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में यथा अंगुत्तर निकाय के महागोविन्दसूत में महिष्मती अवन्ति जनपद की राजधानी के रूप में उल्लेखित है। कालान्तर में उज्जयिनी को यह गौरव प्राप्त हुआ भण्डारकर का विचार है कि छठी सदी ई. पू. दो अवन्ति जनपद थे।

उत्तरी अवन्ति, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी और दक्षिण अवन्ति, जिसकी राजधानी महिष्मती थी। महाभारत काल में अवन्ति क्षेत्र में दो राजाओं विंध्य और अनुविंध्य का शासन रहा, जिन्होंने कौरवों की ओर से लड़े थे और प्रसिद्ध अश्वत्थामा नामक हाथी इनका ही था, जिसकी हत्या के छल से द्रोणाचार्य का वध हो गया था। इसके पश्चात् उज्जयिनी पर वितिहोत्र वंशीय रिपुजंय का शासन था। राजनीतिक परिस्थितियों का लाभ उठाकर अमात्य कुलिक ने उसकी हत्या कर अपने पुत्र प्रद्योत को अवन्ति का राजा बनाया तथा प्रद्योत वंश की नींव रखी। कालान्तर में प्रद्योत चण्डप्रद्योत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बुद्ध के समकालिक चण्डप्रद्योत अवन्तिका का शासक था। प्रद्योत ने 23 वर्षों तक शासन किया प्रद्योत ने अपनी पुत्री वासक्ता का विवाह वत्स के राजा उदयन के साथ किया था।

कलान्तर में मगध के शिशुनाग ने प्रद्योतवंशीय नंदिवर्धन को पराजित कर इस सम्पूर्ण क्षेत्र पर अधिकार कर मालवा क्षेत्र को मगध साम्राज्य में सम्मिलित किया।

पौराणिक काल : यह विंध्य क्षेत्र की प्रमुख जनपद अवन्ति के अधीन था, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। यह व्यापार, कला एवं संस्कृति का प्रधान केन्द्र था। यह से तीन प्रमुख व्यापारिक मार्ग पश्चिम की ओर भड़ौच तथा सोपारा तक, दक्षिण की ओर विदर्भ तथा नासिक, उत्तर की ओर कौशल तथा श्रावस्ती के केन्द्र बिन्दु पर थी। अवन्ति के निकटवर्ती एक अन्य महत्वपूर्ण जनपद दशपुर नाम भी पौराणिक ग्रंथों में प्राप्त होता है। बाद में यही अवन्ति दशपुर क्षेत्र ''मालवा देश'' के नाम से आभाषित किया जाने लगा।

मौर्य वंश : कौटिल्य (चाणक्य) की सहायता से चन्द्रगुप्त मौर्य ने 324 ई. पूं. नंदवंश के अन्तिम शासक धनानंद को पराजित कर मौर्य वंश की स्थापना की। मौर्य वंश की स्थापना भारतीय राजनीति में

एक युगान्तकारी घटना मानी जाती हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अवन्ति को अपने साम्राज्य का भाग बनाया। मौर्य साम्राज्य का विस्तार पश्चिम में मालवा, गुजरात तथा सौराष्ट्र तक था। चन्द्रगुप्त मौर्य के पश्चात् बिन्दुसार मौर्य वंश का शासक हुआ। बिन्दुसार ने अपने जीवनकाल में अशोक को अवन्ति का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया था। दीपवंश के अनुसार मौर्य सम्राट अशोक उज्जैन का महाकुमार नियुक्त था। इस प्रकार सम्भवत: मालवा क्षेत्र भी मौर्य साम्राज्य का एक अंग रहा।

अशोक ने यहाँ लगभग 11 वर्षों तक शासन किया। बिन्दुसार की मृत्योपरान्त अशोक मौर्य साम्राज्य का राजा बना। मौर्य साम्राज्य पाटलिपुत्र, तक्षशिला, उज्जयिनी, तोसकी, गिरनार तथा सुवर्णगिरी प्रान्तों में विभक्त था। अशोक सम्राट के काल में ही उज्जयिनी में सांस्कृतिक गतिविधियाँ प्रारम्भ हुई। अशोक के बाद मौर्य वंश का अन्त होने लगा। कालान्तर में अन्तिम मौर्य नरेश वृहद्रव्य की हत्या कर उसका सेनाध्यक्ष पुष्यमित्र ने मगध में शुंगसत्ता स्थापित की।

शक-सातवाहन काल : उत्तर भारत में मगध सत्ता के क्षीण होने पर दक्षिण भारत के सातवाहन शासकों ने उत्तर भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया तथा सातवाहन शासक वाशिष्ठीपुत्र आनंद का सांची महास्तूप के दक्षिण तोरणद्वार से प्राप्त अभिलेख प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्द्ध में मालवा पर तथा सातकर्णी के सिक्कों में अग्रभाग पर हाथी और उज्जैन चिन्ह बने हैं। ब्राम्हीलिपि में 'सातकर्णिस' लिखा है तथा पृष्ठ भाग पर ब्रज और कल्पवृक्ष है। इसके अलावा श्रीसातकर्णी, यज्ञश्री सातकर्णी शासकों के सिक्के मिले हैं। उपरोक्त साक्ष्य सातवाहनों द्वारा मालवा पर आधिपत्य को प्रदर्शित करते हैं।

विक्रमादित्य काल : विक्रमादित्य ने भारत की भूमि को विदेशी शासकों से मुक्त करने के लिए व्यापक अभियान चलाया। उन्होंने सबसे पहले शको को 57-58 ईसा पूर्व अपने क्षेत्र से बाहर निकाल दिया। इसी की याद में उन्होंने विक्रम युग की शुरूआत करके अपने राज्य का विस्तार किया। प्रथम सदी ईस्वीं में पश्चिमी शक क्षत्रपों ने सम्पूर्ण मालवा पर अधिकार किया और लगभग 300 वर्षों तक शासन किया। मालवा पर इनके आधिपत्य का ज्ञान नासिक, जुन्नार कार्ले के नहपान एवं दमाद उरावदत्त अथवा ऋषभदत्त के अभिलेखों से प्राप्त होता है। लगभग 124-25 ई. में सातवाहन राजा ने गौतमीपुत्र सातकर्णी ने नहपान को परास्त कर अपने साम्राज्य की सीमा को मालवा तक विस्तृत किया था। बाद में कर्दमक वंश के चष्टन और पौत्र रूद्रदामन ने अपने छीने गये प्रदेशों को पुन: प्राप्त कर लिया। रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से स्पष्ट होता हैं कि इस समय में आकर जनपद अवन्ति (मालवा), अनूप, उपरांत, सौराष्ट्र एवं आनर्त शक साम्राज्य के भाग थे। कालान्तर में शक-छत्रप में पुन: शक-सातवाहन संघर्ष हुआ।

शक शासक रूद्रदामन ने सातवाहन शासक शातकर्णी को परास्त कर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी पुत्री का विवाह वासिष्ठी पुत्र शातकर्णी से सम्पन्न कराया। रूद्रदामन के उपरान्त शक शासकों की अभीर, मालवा, नाग आदि के साथ संघर्ष में शकों की शक्ति क्षीण हुई। चौथी सदी ईस्वीं में गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय ने शकों को समूल नष्ट कर 'शकारि' उपाधि धारण की।

गुप्त काल :प्रयाग प्रशस्ति के साक्ष्य के अनुसार गुप्त वंश के प्रथम दो नरेश महाराज श्री गुप्त तथा महाराजा श्री घटोत्कच थे और तीसरा महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त था। प्रथम दो किसी के अधीन सामंत थे, जबकि चन्द्रगुप्त प्रथम स्वाधीन शासक था। वर्ण व्यवस्था में भी गुप्तों की स्थिति में उनकी जाति को लेकर अनेक अवधारणाएँ हैं। ऐलेन के अनुसार- 'गुप्त सम्राट शूद्र थे।' पी.एल. गुप्त ने गुप्त सम्राट को वैश्य माना है तथा मीराणी आदि विद्वानों ने विष्णु पुराण का उदाहरण दिया हैं। गुप्त सम्राटों को क्षत्रिय कहने वाले विद्वानों में गौरीशंकर ओझा हैं और डॉ. श्रीराम गोयल के अनुसार गुप्त सम्राट ब्राह्मण थे। 376 ई. में समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय सिंहासन पर बैठा। शीघ्र ही उसने पश्चिम की ओर दृष्टि डाली और शक सम्राट रूद्रसिंह तृतीय को परास्त कर अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया जो अरब सागर तक फैल गया। इस प्रकार 300 वर्षों से भी अधिक विदेशी शासन का अन्त हुआ। उदयगिरि गुफा के शिलालेख तथा सांची के शिलालेख से चन्द्रगुप्त द्वितीय की मालवा प्रान्त में दीर्घकालीन प्रभुत्व की पुष्टि होती हैं।

शक विजय के उपलक्ष्य में गुप्त सम्राट द्वारा जारी की गई चाँदी तथा ताँबे की मुद्राऐं प्राप्त होती हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय सम्पूर्ण पृथ्वी की विजय करते हुए मालवा आये थे तथा साम्राज्य विस्तार हेतु वाकाटकों एवं अन्य राज्यों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। विद्वानों का मत है कि उज्जयिनी के विक्रमादित्य के काल में अवन्ति जनपद समृद्ध देश के रूप में पल्लवित हुआ।

कालिदास ने अवन्ति को स्वर्ग भूमि माना है। मन्दसौर

के शिलालेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय का पुत्र कुमारगुप्त भी मालवा का शासक रहा। कुमारगुप्त के पश्चात् स्कन्धगुप्त गुप्त वंश का शासक हुआ। उसके काल में भी मालवा गुप्त साम्राज्य का भाग रहा, परन्तु गुप्त साम्राज्य का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा और अधीनस्थ सामन्त स्वतंत्रता स्थापित करने लगे। इस समय पश्चिम मालवा में औलिकार वंश की सत्ता स्थापित हुई। प्रथम स्वतंत्र शासक नरवर्मन था। दशपुर अभिलेख उसे स्वतंत्र शासक के रूप में मान्यता देता है। गंगधार अभिलेख नरवर्मन को स्वतंत्र शासक के रूप में सूचित करता है, परन्तु बंधुवर्मा का मंदसौर अभिलेख पुन: गुप्त शासक कुमारगुप्त की अधीनता स्वीकारने की ओर संकेत करता है। औलिकार वंश का सर्वाधिक प्रतापी शासक यशोधर्मन (विष्णुवर्द्धन) हुआ। यशोवर्मन की सबसे बड़ी उपलब्धि हूणों को परास्त कर दशपुर को पुन: प्रतिष्ठित करना थी।

इस प्रकार मालवा पर क्रमश: वाकाटकों और परवर्ती गुप्त नरेशों के क्षणिक प्रभुत्व के प्रमाण उपलब्ध होते हैं, परन्तु राजनीतिक दृष्टि से यह उथल-पुथल का युग कहा जा सकता है। कालान्तर में वल्लभी के राजा शीलादित्य प्रथम ने महासेन गुप्त से मालवा का राज्य छीन लिया, जिसकी पुष्टि चीनी यात्री ह्वेनसांग के कथन से होती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण मालवा 690 ईस्वीं में एक शक्तिशाली राज्य के रूप में विद्यमान रहा था।

कल्चुरी वंश

कल्चुरी शासकों ने 6-7 वीं सदी में मालवा के एक भाग पर अधिकार कर लिया था। अभिलेखीय प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि मालवा के माहिष्मती के पश्चिमी भाग पर कल्चुरी शासकों ने अधिकार कर लिया था। इसमें कृष्णराज, शंकरगण और बुद्धराज के नाम ज्ञात होता हैं। शंकरगण ने 520-600 ईस्वीं में अपना ताम्रपत्र विजय स्थल उज्जैन से जारी किया था। इससे ज्ञात होता है कि पश्चिमी मालवा कल्चुरियों के साम्राज्य का एक भाग रहा। एहोल अभिलेख से ज्ञात होता है कि कल्चुरी बुद्धराज लगभग 600 से 620 ईसवीं के मध्य चालुक्य नरेश मंगलेश के हाथों परास्त हुआ और उसने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया। इस अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि 7वीं सदी ईस्वी में उत्तर एवं दक्षिण की महाशक्तियों में क्रमश: हर्षवर्द्धन और पुलकेशन द्वितीय में सत्तासंघर्ष हो रहा था तब नर्मदा नदी उनके साम्राज्य की सीमा थी और लाटा, गुर्जर एवं मालवा देश उनके मध्य अन्तस्थ राज्य थे।

चिड़िया

मुर्दे को कन्धे पर उठाते ही बेताल बोला
'विक्रमादित्य!
आज एक द्रोणाचार्य ने
फिर एक अर्जुन से पूछा है
कि तुम्हें पेड़ पर बैठी चिड़िया
साफ-साफ दिखायी दे रही है न?
अर्जुन का उत्तर बताओ
वरना अपने सिर को
टुकड़े-टुकड़े करवाने के लिए
तैयार हो जाओ।'
विक्रमादित्य बोले
'बेताल!
बड़ा सामयिक है तुम्हारा सवाल
अर्जुन ने कहा था-
''गुरुवर!
आप मुझे क्यूं बहला रहे हैं?
पेड़ पर जो बैठा है
उसे चिड़िया बतला रहे हैं?
मैं तो देख रहा हूं
पेड़ पर उगी हुई रोटी की भाषा
समस्याओं के समीकरण
आतंक के लम्बे चरण
पेड़ की अखंडता पर उगे हुए छाले
और शाखाओं पर विदेशी मकड़ियों के जाले
मैं देख रहा हूं पेड़ की डाल पर
दो सुलगती आंखें
जो नोच लेना चाहती हैं
हमारा लाल किला और ताज
यह बात है स्वयंसिद्ध
गुरुदेव! उस डाल पर
चिड़िया नहीं बैठा है गिद्ध
मैं फिर भी तीर चलाता हूं
ताकि 'भारत में ना हो पुन: महाभारत'
बेताल बोला-
'राजन! तुमने सही निर्णय दिया
तुम बोले और मै गया'

-पद्मश्री डॉ. सुरेन्द्र दुबे

विक्रमकालीन कलाओं का अद्‌भुत संसार

डॉ. श्याम सुंदर निगम

महाराजा विक्रमादित्य की चतुर्दिक ख्याति उनके शौर्य एवं शासन के लिए रही है तो उनके काल में कलाओं को समृद्ध किया गया। कला के अंतर्गत विक्रमकालीन मालवा में वास्तुकला, मूर्तिकला एवं लोक-कलाओं का समावेश होता रहा है। इस संदर्भ में योगीराज भर्तृहरि ने कहा है कि जो व्यक्ति संगीत, साहित्य एवं कला विहीन होता है, वह सींग और पुच्छ के बिना मात्र एक पशु होता है। संस्कृति की ही भाँति कला भी मानव-जीवन एक सतत प्रवहमान अंतर्धारा रही है। विक्रमादित्य कलाओं का संसार हमेशा से समृद्ध और अद्‌भुत रहा है। इस कला संसार को जानने और समझने के लिए विस्तार से जाना होगा।

विक्रमादित्य के राज्यकाल के कुछ पूर्व बौद्ध स्थापत्य का सबसे महत्वपूर्ण वास्तु रूप स्तूप था। शुंग काल में बौद्ध-निर्माण तो होते रहे, साथ में भागवत धर्म का प्रचार-प्रसार होने से वैष्णव-निर्माण भी मालवा के दृश्य-पटल पर सामने आये। प्रद्योत-मौर्य युग की भाँति ही इस काल में जैन कला ने अपना अस्तित्व बनाये रखा एवं तदनुरूप निर्माण कार्य सम्पन्न होते रहे। विक्रमादित्य एक सहिष्णु शासक थे। उनके राज्य-काल में शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध एवं जैन सभी धर्म पनपते एवं पल्लवित होते रहे।

मौर्यकालीन पूर्वी मालवा में बौद्ध धर्म का प्रामुख्य रहा। इस कारण कोकनद विहार (साँची) में इस काल में महास्तूप का पुनर्निर्माण हुआ, जबकि उज्जयिनी में अशोक मौर्य की भार्या वेदिसा देवी के द्वारा निर्मित एक महास्तूप (जो सम्प्रति वैश्या टेकरी नाम से अभिहित है) का निर्माण हुआ। महेन्द्र एवं संघमित्रा की इस माता ने उज्जैन में भी एक बौद्ध महाविहार की स्थापना की। पूर्वी मालवा के पान गुराड़िया नामक स्थान पर संघमित्रा द्वारा स्थापित उपनथ विहार के अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं।

उज्जयिनी तो चण्डप्रद्योत काल से शैव धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा। ज्योतिर्लिंग महाकालेश्वर का सुप्रसिद्ध मन्दिर उस समय विद्यमान था। उज्जैन में उस काल के ऐसे अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं जिन पर महाकालेश्वर या स्कन्द अंकित हैं। उज्जैन में जैन धर्मावलम्बी मौर्य सम्राट सम्प्रति का शासन होने से संभवत: अनेक जैन निर्माण हुए होंगे। शुंग काल के लगने के उपरांत से लेकर गुप्त काल के समापन तक पूर्वी मालवा में बौद्ध-निर्माण होते रहे। शुंग काल में साँची के मौर्य महास्तूप की परम्परा में अनेक बौद्ध स्तूपों एवं तोरण-द्वारों का निर्माण हुआ। उपरांत नागों का शासन हुआ जो शैव मत के निर्माण-कर्ता अनुयायी थे। शुंगों की विदिशाई शाखा से वैष्णव निर्माण प्रारंभ हुए।

मौर्य काल के पतन के उपरांत की कला का रूप में साँची के आसपास सोनारी में आठ, सतधारा में पाँच, अन्धेर में तीन तथा भोजपुर में 37 स्तूपों के अवशेष मिले हैं जिनसे इस क्षेत्र में स्तूप वास्तुकला का क्रमिक विकास विदित होता है।

साँची से 9 कि.मी. दूरी पर वायव्य दिशा में स्थित एक पहाड़ी हैं। यहां पर जो बौद्ध अवशेष प्राप्त हुए है, उनमें विहार तथा स्तूप हैं। इन अवशेषों से महत्वपूर्ण सूचनाएँ देने वाले कुछ अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर इन्हें शुंगकालीन माना जा सकता है। सोनारी निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण बौद्ध-केन्द्र रहा होगा। किसी प्रकार की बुद्ध या बोधिसत्व को मूर्ति उपलब्ध न होने से यह स्थान निश्चित ही हीनयान भिक्षुओं का गढ़ रहा होगा। प्राचीन बौद्ध साहित्य में कनकगिरि का उल्लेख आया है। कनकगिरि के बारे में कुछ विद्वानों की धारणा है कि मालवा का यह स्थल उज्जैन के पर्व में स्थित वह स्थल है जो वैश्या टेकरी कहलाती है। पास में बसे कानीपुरा ग्राम का प्राचीन नाम कनकगिरि हो सकता है। किन्तु कनकगिरि से कानीपुरा शब्द भाषाशास्त्रीय दृष्टि से विकसित नहीं होता अत: वैश्या टेकरी को प्राचीन कनकगिरि मानना अधिक प्रामाणिक नहीं है।

सोनारी की पहाड़ी पर जो स्तूप-समूह है, उसमें एक महास्तूप सहित आठ स्तूप है। महास्तूप 72 मी. के वर्गाकार आंगन में स्थित है। इस स्तूप का व्यास 14 मी. 40 से. है। आकार की दृष्टि से यह अर्धगोलाकार है। अपने मूल रूप में यह स्तूप 1 मी. 20 से. ऊंची एक गोलाकार वेदी पर खड़ा था जिसके आसपास एक वेदिका थी। इस स्तूप को पहले मिट्टी से बना कर उस पर प्रस्तर खण्डों का आच्छादन किया गया था। वेदिका में प्रयुक्त स्तंभ करीब 90 से. ऊंचे है तथा सामने प्रत्येक सूची 20 से. 8.75 से. की थी। यह वेदिका उदयगिरि के सफेद चुनारी पत्थर की थी। स्तूप सोनारी के पत्थरों से निर्मित था। स्तूप महावेदिका से घिरा था, जिसके अवशेष में कुछ 1 मी. 11 से. ऊंचे स्तंभ मिले हैं। इनकी बाजुएँ 23.75×20 से.मी. की हैं। स्तंभों को सूचियों की तीन पंक्तियों से जोड़ा गया था, इसकी प्रत्येक सूची 37.5×27.5 × 8 से की हैं। महावेदिका का स्तंभों से ऊपर प्रयुक्त उष्णीश साँची से भिन्न है, क्योंकि 28.75 से.मी. ऊंचे उष्णीष का 5 से.मी. भाग बाहर की ओर आगे निकला है है। स्तूप में निर्मित अस्थि प्रकोष्ठ में कुछ मंजूषाएँ मिली हैं। महावेदिका पर उत्कीर्ण अभिलेखों की लिपि

तथा साँची के स्तूप क्रमांक 2 से वास्तुगत समानता होने से यह स्तूप शुंगकालीन प्रतीत होता है।

सोनारी का स्तूप क्र.2 अध्ययन की दृष्टि से महत्व रखता है। इसका प्रांगण 49 मी. 50 से.मी. वर्गाकार है। इसका व्यास 8 मी. 25 से.मी. है इसकी वेदी गोलाकार है। इसमें से साँची के कुछ भिक्षुओं की अस्थियाँ पाँच अस्थि-मंजूषाओं से प्राप्त हुईं। इन मंजूषाओं पर इनके नाम उत्कीर्ण किये गये थे। सोनारी के अन्य स्तूप अपेक्षाकृत काफी लघु एवं भग्न हैं। जो केवल इस बात का संकेत देते है कि साँची के बाद शुंग काल में यह स्थल बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण स्थल रहा था।

सतधारा का पर्वतीय स्थल सोनारी से लगभग 5 कि.मी. की दूरी पर है। यहां का स्तूप- समूह सात स्तूपों को सहेजे हुए हैं। मूल रूप से यहां का महास्तूप 30 मी. 30 से.मी. व्यास का अर्द्धगोलाकार था। इसकी ऊंचाई लगभग 15 मी. थी। स्तूप के आसपास स्तम्भयुक्त वेदिका थी। हर्मिका भी स्तम्भयुक्त वेदिका से युक्त थी। दोनों ही वेदिकाएँ चौकोर एवं अलंकृत थी। वर्तमान में महास्तूप केवल 9 मी. ऊंचाई तक ही अवशिष्ट हैं। स्तूप क्र. 2, 7 मी. 20 से.मी. व्यास का है। साँची के स्तूप क्र. 3 की भाँति यहां से भी सारिपुत और महामोद्गल्यायन की अस्थियाँ व उत्कीर्ण अभिलेख युक्त मंजूषाएँ प्राप्त हुई हैं। यहां शेष स्तूप अपेक्षाकृत छोटे एवं भग्नावशेष के रूप में विद्यमान है। सतधारा के निर्माणों को देखने से ज्ञात होता है कि साँची और सोनारी की भाँति यह स्थल बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा का केन्द्र रहा।

अन्धेर विदिशा से लगभग 15 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। यहाँ तीन स्तूपों के अवशेष प्राप्त हुए। ये अवशेष निकटवर्ती पहाड़ी पर देखे जा सकते हैं। अन्धेरी का प्रमुख स्तूप 1 मी. 20 से. मी. ऊंची गोलाकार वेदी पर खड़ा था। इनमें मौर्यकालीन बौद्ध भिक्षुओं के अस्थि-अवशेष प्राप्त हुए हैं, यद्यपि यह स्तूप शुंग काल में ही निर्मित हुए थे।

भोजपुर बौद्ध स्तूपों का एक विशाल केन्द्र है, जहां छोटे-बड़े 37 स्तूपों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह स्थल विदिशा से लगभग 10 कि.मी. आग्नेय में साँची से लगभग 11 कि.मी. की दूरी पर चार समूहों में विभक्त हैं।

प्रथम समूह : भोजपुर का स्तूप क्र 1 अर्धगोलाकार 19 मी. 85 से. व्यास का था। यह स्तूप 3मी. 45 से. चौड़े और 1 मी. 50 से. ऊंचे तल पर निर्मित 1 मी. 20 से. ऊंचे गोलाकार आधार पर बनाया गया। इसी आधार सहित ऊंचाई 7 मी. 40 से. है इस स्तूप को 75 मी. 60 से. × 64 मी. 20 से. के प्रकार से कालान्तर में घेरा गया था। यहां तक स्तूप क्र.2 की स्थिति सबसे अच्छी हैं। यह स्तूप क्र.1 के दक्षिण मं 60 मी. की दूरी पर 72×63 मी. के प्रकार के मध्य स्थित था। यह स्तूप अर्द्धगोलाकार 1 मी. 20 से. के आधार सहित 4 मी. 21 से. ऊंचा था। इसका व्यास 8 मी. 70 से.मी. है। संपूर्ण स्तूप को बना मसाले या मिट्टी में चिनाई किये पत्थर के टुकड़ों से बनाया गया। स्तूप क्र.3 की ऊंचाई 4 मी. 20 से. तथा व्यास 12 मी. है।

स्तूप क्र. 4 39 मी. ऊंचा है। स्तूप की ऊंचाई 4 मी. 80 से. है। इसके पूर्व दिशा में एक अन्य स्तूप का आधार गोलाकार है, जिससे स्तूप का व्यास 5 मी. 40 से. विदित होता है। इस समूह में भोजपुर का स्तूप क्र. 7 और 8 बी. व सी 10 डी, 10 डी ए, 2 एफ 3 एच 5 आई तथा स्तूप क्र. 6 आते हैं। स्तूप क्र. 7 का व्यास 9 मी. 70 से. है। भोजपुर के द्वितीय समूह में स्तूप क्र.8 बी सबसे बड़ा स्तूप है। इसका व्यास 8 मी. 47.5 से. एवं स्तूप का गोलाकार आधार तल से ऊंचा था। स्तूप क्र. 8 सी का आधार गोलाकार एवं 45 से ऊंचा, व्यास 8 मी. 70 से. एवं ए का व्यास 4 मी. 65 से. 12 एफ एवं 12 एच का व्यास 5 मी. 10 से. 15 आई का व्यास 5 मी. 55 से. तथा 16 का व्यास 7 मी. 5 से. ज्ञात 4 द्वितीय समूह 8 1 होता है।

भोजपुर के स्तूपों के तीसरे और चौथे समूहों में कई छोटे-छोटे अवशेष अब शेष रह गये हैं। भोजपुर स्तूपों में सर्वाधिक पूर्णता का आभास देने वाला स्तूप क्र. 2 है। यह बिना मिट्टी की सहायता लिये पत्थरों से निर्मित है और अधिकांश रूप से सुरक्षित हैं। भोजपुर से स्फटिक का अण्ड, हर्मिका, छत्र व दण्ड सहित विभिन्न टुकड़ों से निर्मित 11.15 मी. ऊंचा एवं 2.7 मी. व्यास का एक सुन्दर स्तूप कनिंघम को मिला था। यह स्तूप प्रथम शताब्दी ई. पू. का है। विभिन्न स्फटिक के टुकड़ों से निर्मित किया गया यह स्तूप अद्वितीय है। इसका धातु मंजूषा के रूप में उपयोग होता था।

तोरण-द्वार : शुंगकालीन तोरण-द्वार सारे मालवा में केवल साँची में ही उपलब्ध है। शुंग वंश के पतन के उपरांत विदिशा पर ई.पू. प्रथम शताब्दी में सातवाहनों का अधिकार हो गया था। उस समय इन तोरण-द्वारों का निर्माण हुआ। इसका प्रमाण दक्षिणी द्वार बनाया गया। संभवत: यह प्रवेश द्वार मौर्यकाल में ही रहा होगा, क्योंकि इसी द्वार के पास अशोक का स्तंभ विद्यमान है। स्तूप तक पहुंचने का सोपान मार्ग भी दक्षिण दिशा में है। दक्षिण द्वार के निर्माण के बाद क्रमश: उत्तरी, पूर्वी और पश्चिमी तोरणद्वार बनाये गये। ये तोरणद्वार विभिन्न दानदाताओं के उदार सहयोग से निर्मित हुए जिनके नाम स्तम्भों, बड़ेरियों, वेदिकाओं एवं प्रदक्षिणा-पथ के प्रस्तरों पर उत्कीर्ण हैं।

जिन वास्तुकारों से इनका निर्माण करवाया, उनका संबंध काष्ठ और हाथी दांत के बारीक कार्य से भी था। अत: इस तोरण-द्वारों और उनसे संबंधित बड़ेरियों और वेदिकाओं के निर्माण में

उन्होंने अपने मूल कला आधारों का खुल कर सहयोग लिया। महास्तूप के आसपास के इन चार तोरण-द्वारों के अतिरिक्त स्तूप क्र. 2 के सम्मुख भी एक तोरण-द्वार लगभग इसी समय निर्मित करवाया गया। इन तोरण-द्वारों में दो पहले खम्बें लगे हैं जो अपने सिरों पर कुण्डलाकार किनारों वाली तीन लहरदार बड़ेरियों से परस्पर संयुक्त हैं। इन बड़ेरियों और स्तंभों पर विभिन्न विषय उत्कीर्ण किये गये हैं। तोरणों पर उत्कीर्ण अलंकरण अभिप्राय निम्नलिखित वर्गीकरण में विभक्त किये जा सकते हैं अ. जातक कथाओं के दृश्य, ब. गौतम बुद्ध की जीवन-कथाएँ, स. बुद्ध की उत्तरकालीन कथाएँ, व मानुषी बुद्धों के विषय में दृश्य, द. लोक-जीवन प्राणिजगत, प्रकृति आदि से संबंधित दृश्य, एवं ई. अन्य अलंकरण अभिप्राय ।

विहार : कसरावद एवं साँची में हम मौर्यकालीन विहारों का निश्चित प्रमाण प्राप्त हुए। शुंग काल में भी इन विहारों के निर्माण की परम्परा जारी रही। जहां स्तूप बनाये जाते थे वहां बौद्ध भिक्षुओं के लिये विहारों का निर्माण अवश्य होता था। इनके पुरा-प्रमाण प्राप्त होते हैं, चाहे उनके पुरातत्वीय अवशेष प्राप्त हों अथवा न हों। सोनारी, सतधारा, भोजपुर आदि स्थानों पर शुंगकालीन स्तूप विद्यमान हैं।

स्तम्भ : साँची में स्तूप क्र. 5 से थोड़ी दूरी पर दक्षिण में 4.5211 मी. ऊंचा स्तंभ उपलब्ध है। इसकी रचना-विधि और अलंकरणों से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण शुंग काल में हुआ था। इस स्तंभ का आधार व्यास 40 से.मी. है। 1.35 मी. की ऊंचाई तक अष्ट पहलू और उसके ऊपर षोडश पहलू है। स्तंभ शीर्ष का निचला भाग उल्टे कमल के समान है। यह अनुमान लगाया गया है कि इस स्तंभ-शीर्ष पर सिंह प्रतिमा रही होगी। विदिशा जिले में कई स्थानों पर शुंगकालीन स्तंभों के अवशेष मिले हैं। विदिशा, उदयगिरि, बेसनगर आदि में शीर्षयुक्त स्तंभों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन स्तंभों के बहुत से अवशेष इस समय ग्वालियर स्थित गूजरी महल संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। स्तूपों के सामने स्वतंत्र रूप से निर्मित इन स्तंभों का मंदिर-वास्तु की दृष्टि से भी पर्याप्त महत्व हो गया।

मौर्य के पतन और शुंगों के आगमन के साथ ही मालवा में ब्राह्मण धर्म तेजी से पल्लवित हुआ। शुंगों ने भागवत धर्म को प्रोत्साहित किया। शुंगो के पतन के बाद विदिशा क्षेत्र में नागों का वर्चस्व कुछ समय तक बना रहा। नाग प्रमुखत: शैव धर्म के अनुयायी थे। निष्कर्षत: बौद्ध धर्म का प्रभावी अस्तित्व था किन्तु ब्राह्मण धर्म तेजी से विकसित हो रहा था।

विक्रमादित्य के रत्न : बेताल भट्ट

डॉ. प्रीति पाण्डे

विक्रमादित्य के प्राय: सभी विद्वान न केवल विद्वान हैं वरन् अपने-अपने पृथक-पृथक क्षेत्रों के विशेषज्ञ भी हैं। लगभग सभी विद्वान काव्यत्व एवं व्याकरण का प्रचुर ज्ञात तो रखते हैं किन्तु अपने क्षेत्रों में दिग्गज भी हैं। ज्योतिष, चिकित्सा, काव्य-नाट्य शास्त्र एवं न्याय तथा शिक्षा इन सभी क्षेत्रों में ये सिद्ध हस्त थे। एक नवरत्न ऐसे भी थे जो सर्वथा नवीन क्षेत्र के विशेषज्ञ थे। वे थे बेताल भट्ट। विद्वानों का मानना है कि ये भट्ट परंपरा के विद्वान ब्राह्मण पंडित तो थे ही साथ ही तंत्र विद्या के भी जानकार थे। यही कारण है कि वीर किन्तु अंशत: इन विद्याओं पर विश्वास करने वाले सम्राट विक्रमादित्य ने इन्हें नवरत्नों में स्थान दिया।

बेताल भट्ट से सम्बन्धित उनके जीवन के विषय में कई कहानियाँ मिलती है जिनका विश्लेषण आवश्यक है क्योंकि लोकमानस के आधार पर कहानियों में काल्पनिकता का भी पुट है जिससे बेताल भट्ट जैसा विद्वान ब्राह्मण कंधे में एवं वृक्ष में टंगा हुआ बेताल अथवा भूत समझा जाता है। ऐसे में विक्रमादित्य के इस नवरत्न की निरपेक्ष समीक्षा सर्वाधिक आवश्यक है।

प्राचीन काल में 'भट्ट' या 'भट्टारक' पंडितों की भी एक बड़ी उपाधि हुआ करती थी। संभव है यह भी एक बड़े पंडित हों। संभव यह भी है कि ये बेताल काश्मीर के भट्ट परिवार से सम्बन्धित हों इस आधार पर ये कश्मीर के भी लगते हैं। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि एक विद्वान पंडित जो कि नवरत्नों में परिगणित हो उसका भूत-प्रेत-शवादि से सम्बन्ध बड़ा अनुपयुक्त लगता है। किन्तु लोक कथाओं में विक्रमादित्य और बेताल को उन्हीं 25 कहानियों के आधार पर समझा जाता रहा है। इसलिये आवश्यक है कि पहले सभी सूचनाओं को एकत्रित किया जाये एवं फिर उन्हें तर्क एवं साक्ष्य के आधार पर जाँचा जाये।

सूरत कवि के अनुसार गर्धवसेन धारा नगर का राजा था। उसकी चार रानियाँ और छह बेटे थे। बड़ा बेटा शंख सिंहासन पर बैठा जिसे मारकर छोटा विक्रम गद्दी पर बैठा। उसने अपना सम्वत् चलाया। अपने अनुज भर्तृहरि को राजकाज सौंपकर वह देशाटन पर गया। भर्तृहरि के साथ अमृतफल की घटना घटित हो जाने से वह वैरागी हो गया। यह सुनकर विक्रम लौटा तो एक योगी से भेंट हुई। योगी ने उसे बेताल के पास भेजा और फिर बेताल पच्चीसी की पच्चीस अद्भुत कथाएँ बनीं। बेताल पच्चीसी ने विक्रम और बेताल की जोड़ी को कथाओं में दृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उज्जैन में बेताल का पारम्परिक

मन्दिर रिंग रोड पर है जो बड़नगर मार्ग से पिपलीनाका की ओर जाता है। उज्जैन में पहले बेतालों का वर्चस्व था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि भृगुओं को परेशान करने से कारण तालजंघ बेताल नष्ट हुआ। हरिवंशपुराण के अनुसार हैहय तथा तालजंघों ने अधार्मिक आचरण के कारण अपने एक राजा को देश से बाहर निकाल दिया था। कथा-सरित्सागर के अनुसार उज्जैन के श्मशान पर तालजंघ नामक भूतपति बेताल का अधिकार था। बाण भट्ट हर्षचरित के अनुसार महाकाल उत्सव में तालजंघ नामक बेताल ने प्रद्योत के एक पुत्र राजकुमार कुमारसेन की हत्या कर दी थी।

इन विवरणों से स्पष्ट है कि बेतालों का पौराणिक काल में अवन्ती क्षेत्र पर वर्चस्व था। धीरे-धीरे वह वर्चस्व क्षीण हो गया। परन्तु उन्हें अपने अतीत गौरव का सदा स्मरण और अभिमान रहता था तथा अपना वह गौरव पाने का कोई अवसर छोड़ना नहीं चाहते थे। ऐसी घटनाएं प्रद्योत और विक्रमादित्य के काल में भी घटी। विक्रमादित्य के समकालीन बेताल का नाम अग्नि था। मालवा में लोक मालवी भाषा में उग्र हो जाने के लिये 'आग्या वितार' (अग्नि बेताल) मुहावरे का प्रयोग अग्नि बेताल की उग्र छवि की ओर संकेत करता है। यह अग्नि बेताल विक्रमादित्य का परम सहयोगी हो गया था। विक्रमादित्य के नौ रत्नों में एक बेताल भट्ट था। ये दोनों भिन्न प्रतीत होते हैं।

ऐसा लगता है एक अग्नि नामक बेताल था और दूसरा बेताल भट्ट था। प्रतीत होता है पराजित बेतालों ने परवर्ती काल में राजाओं की प्रशस्ति करने का, चारण माह का काम आरंभ कर दिया। प्राचीन नाटकों में राजा की प्रशस्ति या समय की सूचना देते बैतालिकों की उपस्थिति हम निरन्तर पाते हैं। ये प्राय: राजा के साथ रहते हुये भी महल की ड्योढ़ी में हाजरी पर तैनात रहते थे। मत्स्यादि पुराणों में हैहय आवन्त्य जयध्वज का पुत्र तालजंघ था। उसके सभी सौ पुत्र तालजंघ कहलाये। इन हैहयों के पाँच कुल हो गये थे वीतिहोत्र, भोज, आवन्त, तुण्डिकेर और तालजंघ। तालजंघ बेताल होने से उसके वंशज भी बेताल कहलाते होंगे।

बेताल पंचविशतिका में बताया गया है कि साधु के निर्देश पर राजा विक्रमादित्य श्मशान के वृक्ष पर टँगे शव को लाने का उपक्रम पूरा करता है। जैसे ही वह कन्धे पर उठाकर आधी रात में चलता है वह बेताल या भूत से आविष्ट शव राजा को निर्देश देता है कि पूरे पथ में वह बोले नहीं, बोलते ही वह पुन: वृक्ष पर लौट जायेगा। तब वह एक समस्यामूलक कहानी कहता है और विक्रम से उसका हल पूछता है। राजा जैसे ही बोलकर उत्तर देता है वह बेताल पुन: उसी वृक्ष पर जाकर लटक जाता है। इस प्रकार चौबीस बार ऐसा ही होता है। अंतिम कहानी का उत्तर राजा नहीं देता है और वह बेताल को साधु तक पहुँचा देता है परन्तु बेताल राजा को साधु के धूर्तता पहले ही बता देता है कि वह राजा की हत्या करना चाहता है। राजा उस धूर्त साधु की हत्या कर देता है। बेताल प्रसन्न होकर उसका मित्र सहयोगी हो जाता है। इन बेताल प्रश्नों से महाभारत के यक्षप्रश्नों की याद आ जाती है। वहाँ भी यक्ष युधिष्ठर के विवेक की परीक्षा लेता है और यहाँ बेताल विक्रमादित्य के विवेक की परीक्षा लेता है। एक अन्य कहानी में नरभक्षी राक्षस को स्वादिष्ट भोजन का स्वाद चखाकर और युद्ध करके अपने वश में कर राज्य पर विक्रमादित्य ने अधिकार कर लिया था। यह भी बेताल को वश में करने का एक पक्ष है। शूद्रक ने अपने पद्मप्राभृतक भाण में बौद्धों को 'विहार बेताल' कहकर उस बेताल का स्मरण तो कर ही लिया जो उस युग में प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय था।

बेताल भट्ट की रचनाएँ :

जहाँ तक बेताल भट्ट की रचनाओं का प्रश्न है यह माना जाता है कि बेताल भट्ट एक विद्वान कवि भी थे जिन्होंने 16 श्लोकों का 'नीति प्रदीप' नामक काव्य प्रकाशित किया। सातवीं शताब्दी के 'स्वयंभूछन्दस' में बेताल कवि के उल्लेख प्राप्त होते हैं। सुन्दरी या वियोगिनी छन्द का नाम बैतालीय छन्द भी बताया जाता है। यह भी माना जाता है कि 'बेताल पंचविंशतिका' के मूल रचनाकार भी बेताल भट्ट हैं। कालान्तर में भिन्न-भिन्न लेखकों ने पुर्नरचना की गई और यह क्रम कई सौ वर्षों तक चलता रहा। क्षेमेन्द्र की 'वृहतकथामञ्जरी' सोमदेव की 'कथासरित्सागर' तथा राजा जय सिंह के निर्देश पर सूरतकवि द्वारा रचित साहित्य इसमें पुराण, सिंहासनवित्रिशिंका तथा अन्य प्रचलित कथाओं का मिश्रण है। उसके प्रारंभिक भाग में विक्रमादित्य के माता-पिता, परिवार आदि का विस्तृत उल्लेख हैं। इसी प्रकार की कथा जम्भलदत्त की बेतालपंचविंशतिका में भी दी गई है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि विक्रमादित्य के नवरत्न बेताल भट्ट द्वारा रचित बेताल पंचविंशतिका निरन्तर विकसित होती जाती है और कथासरित्सागर के विक्रम केसरी और बेताल की कथा क्रमश: विकासोन्मुखी होती गई। लोकभाषा में इसे बेताल पचीसी कहते हैं। विक्रम-बेताल की कथा सिंहासन द्विंत्रिशतिका में भी मिलती है। इसे लोकभाषा में 'सिंहासन बत्तीसी' कहते हैं। कुछ लोग इसे विक्रम चरित्र भी कहते हैं। संस्कृत में इसके विभिन्न पाँच पाठ प्राप्त होते हैं जिनमें परस्पर भेद भी हैं। गुजराती, मराठी आदि विभिन्न भाषायों में उसके रूपान्तर हुये हैं। जैन परंपरा में भी इस कथा को पूर्ण रूप से अपना लिया।

पुस्तक चर्चा/मनोज कुमार

लोक आस्था के सर्जक राजा भोज

लोक नायक के रूप में राजा भोज की प्रतिष्ठा ना केवल भारतवर्ष में है बल्कि लंका, नेपाल, तिब्बत और मंगोलिया सहित अनेक देशों में उनकी गाथा कही-सुनी जाती है. राजा भोज एक राजा ही नहीं थे अपितु भारतीय साहित्य, ज्ञान साधना और सुशासन के सर्जक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा है. राजा भोज ने अपने जीवनकाल में 84 से अधिक ग्रंथों की रचना की जो उनकी साहित्य साधना का अप्रतिम उदाहरण है. राजा भोज के सम्पूर्ण जीवनक्रम का गहराई से अध्ययन करते हुए वरिष्ठ अध्येता एवं लेखक भगवतीलाल राजपुरोहित ने एक ऐसे ग्रंथ की रचना की है जो राजा भोज के जीवन से जुड़े अनेक अनछुये पहलुओं से पाठकों का परिचय कराती है. परमार राजा भोज धारानगरी (वर्तमान में धार) से वे धारेश्वर और राज्य का केन्द्र मालवा होने से मालवाधीश भी कहलाते थे. राजा भोज एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व होने के साथ मिथक पुरुष भी बन गए. 'कहां राजा भोज और कहां गंगू तेली' कहावत वर्तमान समय में भी जनसामान्य में प्रचलित है. राजा भोज द्वारा तत्कालीन परम प्रतापी गांगयदेव और तेलंग को एक साथ पराजित कर दिये जाने यह कहावत जन-मन में सदैव के लिए स्थापित हो गई. उनका शौर्यबल इतना था कि इतिहास के पन्नों में उल्लेख पाया जाता है कि राजा भोज 55 वर्ष, 7 मास और 3 दिन तक गौड़ सहित दक्षिण भारत तक के देश-क्षेत्र पर राज्य किया था. यह भी उल्लेखनीय है कि समकालीन सैकड़ों राजा परमभट्टारक महाराधिराज परमेश्वर भोजदेव को अपने स्वामी के रूप में आदर देते थे. यह किताब राजा भोज के यशस्वी, न्यायप्रियता, साहित्य के प्रति रूचि आदि से पाठकों का परिचय कराती है. यह किताब इतिहास में रूचि रखने वालों के लिए महत्वपूर्ण है.

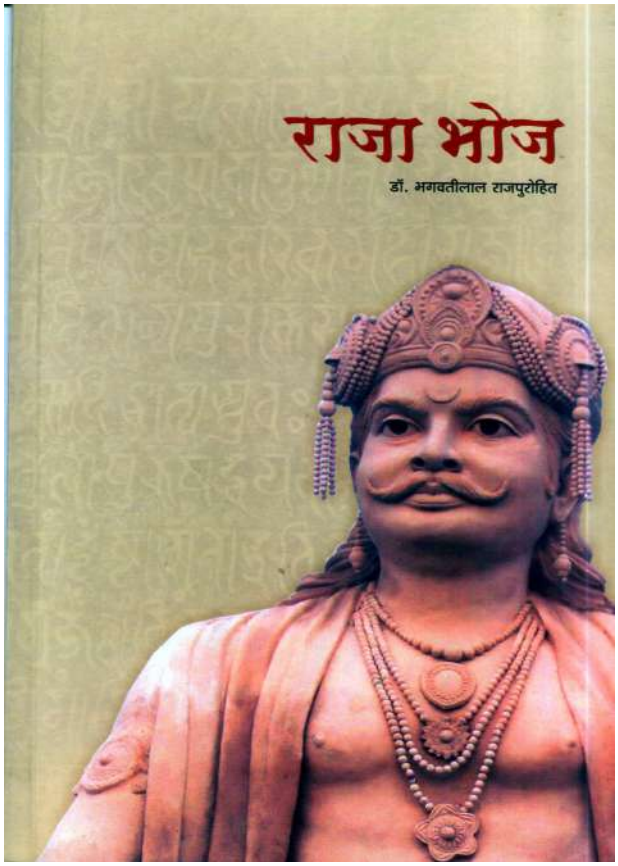

पुस्तक : राजा भोज

लेखक : भगवतीलाल पुरोहित

प्रकाशक : स्वराज संस्थान संचालनालय
संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल

मूल्य : 80/-

'राजा भोज की अनेक उपाधियों तथा विरुदों के उल्लेख प्राप्त होते हैं. 'महाराजाधिराजपरमेश्वर' उनके राजकीय वर्चस्व को प्रकट करती उपाधियां हैं. इन्हीं विशेषताओं को प्रकट करता उनका एक विरुद है त्रिभुवननारायण. इसी 'त्रिभुवननारायण' नाम का एक शिव मंदिर राजा भोज ने चित्तौड़ में बनवाया था जिसे भोजस्वामिदेव भी कहते हैं. फिर इनका नाम समिद्धेश या समाधीश हो गया.'

-इसी पुस्तक से

महाराज विक्रमादित्य शोध पीठ संस्थान स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक श्रीराम तिवारी. समन्वयक मनोज कुमार.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन : 0734-2521499 0755-2660407 e-mail : mvspujjain@gmail.com,vikramadityashodhpeeth@gmail.com